सेज पर संस्कृत उपन्यास में चित्रित स्त्री

डॉ. आशीष
सहायक प्राध्यापक
सेंट क्लारेट महाविद्यालय, बैंगलोर, कर्नाटक
ashish@claretcollege-edu-in

Article Link: https://aksharasurya.com/2023/06/ashish/

संस्कृति और संस्कार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। व्यापक अर्थ में देखें तो संस्कार अर्थात् शुद्धि, संशोधन, सफाई, सुधारना, आदि अर्थात् मनुष्य के मन, वचन और कर्म का शुद्धिकरण करना या उसमें सुधार करना। गोविंद चंद्र पाण्डेय ने 'संस्कारको परिभाषित करते हुए लिखा है – ''संस्कृति का सामान्य अर्थ है – संस्कार। संस्कार कहते हैं, दोषापनयन और गुणाधान को।[1] संस्कृति और संस्कार के सन्दर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन भी सटीक जान पड़ता है कि ''मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है।[2] इस आधार पर यह समझा जा सकता है कि संस्कृति और संस्कार को लेकर जो वास्तविक मान्यताएँ समाज में प्रचलित हैं, उसका अनुसरण नहीं किया जाता। इसके विपरीतऐसे कई पहलू सामने आते हैं, जहाँ पर समाज के सत्ताधारी अपनी वक्तिगत मान्यताओं को लागू करते हुए दिखायी देते हैं। इस संदर्भ में स्त्री को धर्म से जोड़ कर देखा जाए तो समाज के विभिन्न सत्ताधारियों की मानसिकता एक सी ही दिखायी देती है। धर्म का नाम आते ही स्त्री के प्रति संकुचित मानसिकता का प्रदर्शन खुलेआम होता है। वास्तव में, धर्म मनुष्यों को उनकी मानसिक विकृतियों से मुक्त करता है किन्तु कई लोग इसमें हस्तक्षेप कर उसे रूढ बना देते हैं और उसका पालन अनिवार्य कर देते हैं।

इस आधार पर मधु कॉंकरिया कृत 'सेज पर संस्कृतउपन्यास को देखा जा सकता है। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से समाज की उन ग्रंथियों को उजागर किया है, जिनमें स्त्रियाँ संस्कृति और संस्कार के नाम पर उत्पीड़ित एवं प्रताड़ित होती हैं। स्त्री एवं पुरुष तथा जैन धर्म के शीर्ष पर बैठे धर्मगुरु की सत्ता के माध्यम से सामाजिक विकृतियाँ एवं अपसंस्कृति उभर कर आती है। परिणामस्वरुप मातृसत्ता के आगे एक छोटी लड़की (छुटकी) का जीवन नारकीय बन जाता है।

प्रायः देखा जाता है कि संस्कार और संस्कृति की परिधि को अधिकतर स्त्रियों तक सीमित करके रख दिया जाता है, इसका उदाहरण छुटकी और उसकी माँ के द्वारा देखने को मिलता है। वहीं, उस घर की बड़ी बेटी संघमित्रा इस

जंजाल में नहीं फँसती और प्रयास करती है कि किसी भी प्रकार कम–से–कम वह अपनी छोटी बहन छुटकी को साध्वी बनने की प्रक्रिया से बचा ले। इस दौरान वह अनुभव करती है कि स्त्री के अस्तित्व को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। स्त्री की शुद्धताए वं अशुद्धता को उसके चरित्र का पैमाना बनाया जाता है, उदाहरणस्वरूप – ''शुरू से ही तर्क करने की अपनी आदत। मैं फिर अड़ी रही, 'जब रोज बिना नहाए नहीं घुसती तो आज कैसे घुसेगी?'हँसी रोकने के प्रयास में दादी की नाक फूल गई थी। दबी–दबी हँसी हँसते और नाक फुलाते हुए बोली, 'रोज तेरे पापा रात को तेरी अम्मा को गंदा कर देते हैं, इस कारण तेरी अम्मा को नहाना पड़ता है।[3] जो कार्य एक स्त्री के द्वारा हो रहा है, वही कार्य पुरुष (पति) द्वारा भी हो रहा है किन्तु संस्कार और संस्कृति के सारे नियम स्त्रियों पर ही लागू होते हुए दिखायी देते हैं, पुरुषों पर नहीं। यह समाज की वास्तविकता है, जो वह चयनित रूप से अपनाता है।

भारतीय संस्कृति एवं संस्कार के मूल तत्वों को देखें तो विवाह उसका एक अभिन्न अंग है और सहवास विवाह से जुड़ी हुई एक क्रिया। अतः जिस प्रकार लेखिका ने लिखा है कि सहवास के बाद स्त्री गंदी हो जाती है और रसोई में जाने से पहले उसे नहाना पड़ता है, तो यह जानना आवश्यक है कि सहवास के बाद नहाना भारतीय संस्कृति का ही एक अंग है। सहवास एक प्रकार का श्रम है, जो दो मनुष्यों के सानिध्य से हो रहा है और उसके बाद नहाना अर्थात् अपने शारीरिक अंगों को साफ करना है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में सहवास के बाद शुद्धि एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जो स्त्री और पुरुष दोनों पर लागू होती है। लेखिका ने इस पक्ष को चयनित ढंग से प्रस्तुत किया है।

संस्कृति का सामाजिक स्वरूप सकारात्मक होता है। जबकि उसका यथोचित अनुसरण सामाजिकों को करना होता है। कोई काम किसी सत्ताधारी द्वारा बद्धमूल तरीके से होने लगे, तो वह संस्कृति अपसंस्कृति में बदलने लगती है। समाज में कई धारणाएँ प्रचलित हैं कि अमुक–अमुक काम करने से ऐसा होता है और उसका नकारात्मक परिणाम मिलता है।

प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से समाज में स्त्री को पुरुष के अधीन दिखाया गया है। सभी रीति–रिवाजों में पत्नी पति से आशीर्वाद प्राप्त करती है और पति से पूर्व भोजन ग्रहण नहीं करती। वर्तमान समय में इस दृष्टि में भी परिवर्तन दिखाई देता है। ऐसी कई मान्यताएँ समय के साथ रूढ़िग्रस्त होती चली गई हैं। समय में परिवर्तन के साथ–साथ ऐसे रिवाज और परम्पराओं में भी परिवर्तन हुआ है और हो रहा है। कुछेक जगह स्त्री के विद्रोह को दबा दिया

जाता है। लेखिका ने एक कथांश में विवाह की एक रस्म का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है – ''एक राजस्थानी शादी में उसने देखा था, शादी की रस्म के बाद दूल्हे को सूखे नारियल का एक टुकड़ा दिया गया था – चबा लीजिए। मुँह में रखकर उसने दो–तीन बार चबाया ही था कि दुल्हन की माँ ने कहा, अब इस चबाए टुकड़े को निकालकर अपनी दुल्हन के मुँह में डाल दीजिए। आज समझी वह इन सारी रस्मों का निहितार्थ। शुरुआत में ही मन की जमीन पर हीनता का बिरवा रोप दिया जाए।''[4] लेखिका ने संघमित्रा के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि इस प्रकार जूठन खिलाना अपमानजनक है। साथ ही यह भी बताने का प्रयास है कि परंपरा और रीति–रिवाज के नाम पर स्त्री के साथ दुर्यवहार होता है। पति का चबाया हुआ नारियल का टुकड़ा उसकी पत्नी को देना विकार बोधक माना गया है। यह भी कि विवाह के प्रथम दिन से ही स्त्री के मन में हीनता का भाव पैदा कर दिया जाता हैए वं उसको मानसिक रूप से गुलामी की ओर धकेल दिया जाता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य के अनुसार देखा जाए तो विवाह के बाद सामूहिक रूप से कुछ ऐसी प्रथाएँ होती हैं, जिससे नवविवाहित दंपति के बीच सामंजस्य स्थापित हो सके। वर्तमान समय में इसे कई प्रकार की क्रीड़ाओं द्वारा संभव करवाया जाता है। उन क्रीड़ाओं में स्त्री को स्वतन्त्रता होती है कि वह उसमें भाग ले या न ले, किन्तु वह भाग लेती है और धीरे–धीरे सबके साथ घुलती–मिलती जाती है। ऐसी कई क्रीड़ाएँ प्रत्येक क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न रूपों में होती हैं। अतः यह स्त्री पर मढ़ा या थोपा नहीं जाता कि वह जबरन कोई कार्य करे। जो कार्य वह नव दंपति के रूप में करती है, वही कार्य फिर वह दूसरे नव दंपति के साथ करवाने में भूमिका निभाती है। अतः उपरोक्त उदाहरण के माध्यम से देखा जाए तो लेखिका ने भारतीय सांस्कृतिक तत्वों को हीनता की संज्ञा दी है, जो कि भारतीय समाज एवं सांस्कृतिक दृष्टि से उचित नहीं हो सकती।

संघमित्रा अपनी छोटी बहन छुटकी को साध्वी बनने से रोकने के लिए अनेक प्रयास करती है। वह जैन आश्रम के अंतःनिवासियों से बातचीत करती है, ताकि मूल समस्या की जड़ तक पहुँच कर तर्क–वितर्क करे। इस कड़ी में संघमित्रा ने आश्रम में कई वरिष्ठ स्त्रियों से बातचीत की और पता लगाने का प्रयास किया कि आखिर उन्होंने साध्वी बनने का निर्णय क्यों लिया? इसमें कई स्त्रियों ने अपनी अलग–अलग कहानियों का बखान किया। उन्हीं में से एक स्त्री बताती है कि उसे शादी में दहेज भरपूर दिया गया था, किन्तु सुहागरात में पता चलता है कि उसके पति के बड़े भाई ने उसे ठुकराया दिया था और फिर उसके

छोटे भाई ने उससे विवाह किया था। अपने आत्मसम्मान को ठेस पहुँचते देख उसका मन वैराग्य की ओर उन्मुख हो गया।

दृष्टव्य है – ''दुगने उत्साह और धूमधाम से पिता ने ब्याह रचाया। मैं मन मैला न करूँ, इसलिए हैसियत से बढ़कर खर्च किया। कुन्दन का सेट और सोने की बिछिया दहेज मे दी। पूरे दो दिन बारात की खातिर–तवज्जो की। इस पर भी नहीं भरा मन तो हर बाराती को विदाई में चाँदी का प्याला दिया। पर कौन टाल सकता था होनी को?"[5] स्त्रियों को निरंतर यही कहा जाता है कि समझौता कर लो। घर–परिवार में यदि स्त्री का सम्मान हो तो उसको किसी के अधीन रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वरन् वह आत्मनिर्भर होकर समाज को नई दिशा देने का दंभ भी रखती है।

संघमित्रा ने जिस तरह उस साध्वी से बात की उसी तरहए क साधु मुनिवर से भी बातचीत की। उसने पाया कि साधु मुनिवर अनैतिक रूप से ऐसे कई कार्य कर रहा था, जो समाज हित में नहीं थे। उसके पिता ईमानदारी से अपना काम करते तो वहीं उनका बेटा बेईमानी से काम करता। पिता संस्कृति के परिचायक तो बेटा अपसंस्कृति का। दो व्यक्ति दोनों में समय का अंतराल और उनके कार्यों में भी वही अंतर। इस तरह संघमित्रा को यह आभास हो रहा था कि वह अपनी छोटी बहन को इन उदाहरणों के आधार पर बचा लेगी, किन्तु अंततः वह असफल ही रहती है।

समाज में धर्म के नाम से ऐसी कई मान्यताएँ बना दी गई हैं, कि वह किसी आडंबर से कम नहीं होती।ए क छोटी लड़की (छुटकी) जो समाज और मोह–माया से अपरिचित है, वह साध्वी बनने का अर्थ क्या जाने? उस पर जबरन् सामाजिक दबाव डाल कर अंधेरे में धकेलना कितना सार्थक है? धर्म को सर्वोपरि मान कर मनुष्य और उसके मनुष्यत्व को समाप्त कर देना, समाज के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। वास्तव में धर्म और संस्कृति किसी को बाँध कर नहीं रखती, वह अनेक सामाजिक बंधनो और अमर्यादित व्यवहारों से मनुष्य को मुक्त करती है। जो कार्य धर्मएवं संस्कृति के नाम पर एक जगह बाँध कर रख दिए जाते हैं वे सही मायनों में अपसंस्कृति को बढ़ावा देते हैं। वे समाज में विकृतियों का संचार करते हैं। उदाहरणस्वरूप देखा जाए तो – ''दिव्यप्रभा के बालों की आखिरी लट को साध्वी प्रमुख प्रज्ञावती ने उखाड़ दिया।...दुल्हन छुटकी का जोगिन में रूपान्तरण। शृंगारहीन। बेलमुंडी। मुँह पर श्वेत पट्टी। नंगे पैर। श्वेत घाघरा–ओढ़नी। हाथों में चरवला। और चेहरे पर भावहीन उदासी। अब वह मोक्ष मार्ग की यात्री थी।"[6]

साध्वी बनने की प्रक्रिया के दौरान छुटकी के साथ अमानवीय व्यवहार हुआ। उसके बालों को जड़ से उखाड़ दिया गया। उसके वस्त्र भी बदल दिये गए और सफेद घाघरा, ओढ़नी पहना कर सबके सामने प्रस्तुत किया गया। इतना ही नहीं उस छोटी चंचल बच्ची के मुँह को भी पट्टी से बाँध दिया गया। जिस बच्ची के खेलने–कूदने के दिन थे, उस नासमझ को साध्वी का नाम देकर जंजीरों में जकड़ दिया गया। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्तिए`सी किसी कुरीति का विरोध करता है तो वह धर्म विरोधी कहलाया जाता है।

वर्तमान समय जिस तीव्रता से आगे बढ़ रहा है, उसमें ऐसे कई उदाहरण आएँ हैं जिसमें युवा आधुनिक भौतिकता को त्याग कर मोक्ष का सहारा लेना उचित समझते हैं। वहीं, कुछ युवाओं को मोक्ष की आड़ में साधु–साध्वी भी बनाया जाता है। तब वे सामाजिक दबाव सहते हुए चुपचाप चले तो जाते हैं, परंतु आश्रम में कुछ समय व्यतीत करने के बाद जब उनके अंदर का व्यक्तित्व, जिज्ञासाएँ एवं इच्छाएँ जागृत होती हैं तो वे अपने आपको रोक नहीं पाते। वे सारी क्रियाएँ अचेतन होकर उनमें बसी रहती हैं और फिर किसी–न–किसी रूप में वह बाहर आती हैं। मोक्ष को जीवन का अंतिम लक्ष्य मानना उनके लिए मिथ्या साबित होता है।

उपन्यास के माध्यम से देखा जाए तोए क साधु मुनिवर को जीवन की वास्तविकता का ज्ञानए क स्त्री ने कराया। वह जिस आत्मिक सुख के लिए आया था उसे वहए क स्त्री द्वारा प्राप्त हुआ – ''वह सुख एक स्त्री है जिसने पहली बार मुझे पुरुष होने का अहसास कराया है। जिसने पहली बार मुझे इस सत्य की प्रतीति कराई कि जीवन की पुकार क्या होती है? और कितना कठिन है उसे अनसुनी करना। बिना एन्द्रिक सुख से गुजरे हम कुंठित आत्मा चाहें बन जाएँ पर मुक्तात्मा नहीं बन सकते कि इंद्रिय निग्रह बकवास है।''[7]

कई बुद्धिजीवी या साधारण मनुष्य धर्म का विरोध न कर, धर्म में पनपी कुरीतिए वं आडंबरों का विरोध करते हैं। ऐसे में उनके आसपास के लोग उन्हें धर्म विरोधी करना आरंभ कर देते हैं। संघमित्रा के पिता धर्म में पनपी कट्टरताओं का खुल कर विरोध करते थे और उनकी पत्नी अर्थात् संघमित्रा की माँ का मानना था कि उनकी मृत्यु उन्हीं मान्यताओं के कारण हुई। अंधविश्वास से जकड़ी उनकी पत्नी समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं, जहाँ ऐसा मानना सामान्य है कि धर्म (धर्म में पनपी कुरीतियाँ) के खिलाफ बोलने से उनकी कुछ हानि हो सकती हैइसलिए धर्म के खिलाफ कुछ न कहा जाए। धर्म के नाम पर पनपी कुरीतियों का विरोध न किया जाए, जबकि वास्तविकता कुछ और ही कहती है।

अतः इस उपन्यास के माध्यम से कई पहलू सामने आते हैं, जैसे असमानता, सत्ता का रूढ़ रूप, अमानवीयता, मूल्यों का नैतिक पतनए वं सांस्कृतिक मूल्यों का पतन आदि। इसके अतिरिक्त यह पहलू भी सामने आता है कि स्त्री की स्वतंत्रता को लेकर कई पुरुष मुक्त विचारों को भी अपनाते दिखाई देते हैं, परंतु कई पुरुष उसी परंपरा का निर्वहन करते दिखाई देते हैं, जो रूढ़िबद्ध हो चुके हैं। कई स्त्रियों ने इस बंधन को स्वयं तोड़ा है और वे प्रयास करती हैं कि समाज में समन्वय का संचार हो। तर्क के आधार पर वे अपनी अस्मिता एवं स्त्री के अस्तित्व को बचाने का प्रयास कर रही है, ताकि अधिक से अधिक स्त्रियाँ इस जंजाल से मुक्त हो सके। संस्कार, संस्कृति और धर्म मनुष्य में मनुष्यत्व का निर्माण करता है। आवश्यकता पड़ने पर मनुष्य ही मनुष्य के काम आने वाला प्राणी है, किन्तु समाज के कुछ बुद्धिजीवियों और धार्मिक पद पर बैठे लोगों ने इसको मूल्यहीन बना दिया है। धर्म के नाम से फैली कुरीतियों को समाप्त करने की बजाए, वे स्वयं इसका पालन करते दिखाई देते हैं।

पाद लेख:

1. गोविंद चंद्र पांडेय, समसामयिक भारतीय संस्कृति का आधार, संस्कृति की सत्ता (सं. डॉ. दयानिधि मिश्र) पृ. 21
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तीसवाँ संस्करण 2011, पृ. 67
3. मधु काँकरिया, सेज पर संस्कृत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010 पृ. 56
4. वही, पृ. 151
5. वही पृ. 95
6. वही पृ. 132
7. वही, पृ. 99